HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

भाषाएँ सामाजिक समानता में सहायक होती हैं।

(अँग्रेजी भाषा एवं साहित्य के विद्वान तथा हैदराबाद स्थित अँग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के शिलांग केंद्र के निदेशक प्रो. कैलाश बराल से अँग्रेजी एवं भारतीय भाषाओं से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी की गयी बातचीत के मुख्य अंश)

अरिमर्दन: भाषा एवं सत्ता के संबंधों को आप कैसे देखते हैं?

कैलाश बराल : भाषा और सत्ता के बीच हमेशा एक करीबी रिश्ता रहा है, सत्ता समूह द्वारा ही संस्कृत को देवताओं से जोड़ा गया है, तो फारसी अदालत की भाषा रही है। अँग्रेजी शासकों की भाषा थी और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद आज भी यह शासक एवं कुलीन वर्ग की भाषा के रूप में चिह्नित होती है। इसके साथ इसने समाज को दो भागों में बाँटा है, एक वह जो अँग्रेजी जानते हैं और दूसरे वह जो अँग्रेजी नहीं जानते हैं, भूमंडलीकरण ने इस परिदृश्य को और जटिल बनाया है। आज भी एक उच्चस्तरीय जीवन और रोजगार के लिए अँग्रेजी की ओर देखा जाता है। इसलिए अँग्रेजी सत्ता और सशक्तिकरण के साधन की एक भाषा है।

अरिमर्दन: औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक भारतीय साहित्य पर अँग्रेजी के प्रभाव को किस रूप में रेखांकित किया जा सकता है?

कैलाश बराल : अँग्रेजी साहित्य एक विषय के रूप में भारतीय साहित्य एवं संस्कृति को गहन रूप में प्रभावित किया है। वैसे भी दुनिया के साहित्य रूप एवं प्रविधि के स्तर पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, जैसे भारतीय भाषाओं के साहित्य ने रूप और शैली के स्तर पर हमेशा एक-दूसरे से समृद्ध हुई हैं, इसके साथ ही विदेशी भाषाओं का भी इन पर प्रभाव पड़ा है, विशेषकर यूरोपीय आधुनिकता ने तो भारतीय साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है। मुक्तिबोध और अज्ञेय जैसे साहित्यकार इससे प्रभावित दिखते हैं। टी॰ एस॰ इलियट और डब्ल्यू॰ बी॰ यीट्स जैसे अँग्रेजी साहित्यकारों का प्रभाव लगभग सभी

भारतीय भाषाओं के साहित्य पर पड़ा है। यही आज उत्तर-आधुनिक भारतीय साहित्य सहित देश के अँग्रेजी-लेखन के साथ भी हो रहा है।

अरिमर्दन: ज्ञान की भाषा के रूप में अँग्रेजी और समकालीन भारतीय भाषाओं को आप कैसे देखते हैं?

कैलाश बराल : अँग्रेजी भाषा को विभिन्न दृष्टियों से देखा गया है, औपनिवेशिक विरासत, हिंदी सहित भारतीय भाषाओं की विरोधी, पुस्तकालय की भाषा के रूप में और दुनिया के लिए एक खिड़की के रूप में। आज विज्ञान, प्रौद्योगिकी और अन्य क्षेत्रों में ज्ञान की भाषा प्राय: अँग्रेजी ही है। विश्व के डिजिटल ज्ञान संग्रह की भाषा के रूप में भी अँग्रेजी का ही वर्चस्व है। इस रूप में हिंदी सहित भारतीय स्थानीय भाषाओं की स्थिति ऐसी अभी नहीं हो पायी है। इस प्रकार आप पसंद करें या न करें अँग्रेजी आज के व्यवहार में ज्ञान के क्षेत्र की भाषा है।

अरिमर्दन: क्या देश की सामाजिक समानता के प्रयासों में अँग्रेजी के सांस्कृतिक प्रभाव का कोई योगदान है ?

कैलाश बराल : भाषा का सामाजिक समानता में बड़ी भूमिका होती है। यदि किसी देश में सिर्फ एक भाषा का प्रयोग हो, तो सामाजिक एकता और सद्भाव की दिशा में सहायक हो सकता है। मंदारिन से चीन के लोग इतनी आत्मीयता से जुड़े हैं, कि अनेक समस्या वहाँ आती ही नहीं है। किसी बहुभाषिक समाज में भाषा अस्मिता-निर्माण की साधन होती है, जैसा कि भारत में है। शैक्षिक दृष्टि से कुछ दलित चिंतकों जैसे काँचा इलैया एवं मीना कंदासामी का मानना है कि अँग्रेजी शिक्षा का माध्यम होना चाहिए ताकि दलित वर्ग के अगली पीढ़ी इसमें सुशिक्षित होकर अन्य तबके के साथ बेहतर प्रतिस्पर्धा कर सके। हालांकि यह एक द्वैध की स्थिति है, क्योंकि कई महान दलित लेखक एवं दलित मूल के संत कवि अनेक भारतीय भाषाओं में प्रतीक की तरह हैं। फिर भी शिक्षा की दृष्टि से इलैया और कंदासामी का अपना महत्त्व हो सकता है।

अरिमर्दन: क्या 'भारतीय अँग्रेजी' की अवधारणा से आप सहमत हैं?

कैलाश बराल : आज अँग्रेजी के कई रूप प्रचलित हैं। संयोग से क्वीन अँग्रेजी अब समाप्तप्राय है, जिससे यह कहा जा सकता है कि अँग्रेजी पर इंग्लैंड का एकाधिकार नहीं रहा। भारतीय अँग्रेजी भी अँग्रेजी का एक रूप जैसे कि अमेरिकी अँग्रेजी। वाक्य रचना की दृष्टि से भी इसमें कुछ भारतीय किस्मों को शामिल किया है. प्रो ब्रज काचरू ने इसे 'अँग्रेजी की यात्रा' कहा है। लेकिन भारतीय अँग्रेजी के प्रयोग-क्षेत्रों का उस तरह से विकास नहीं हो पाया है, जैसा कि हिंदी का है, जैसे बाजारू हिंदी, संपर्क-भाषा हिंदी आदि। हमारे यहाँ उच्चारण की विभिन्न शैलियों के आधार पर बोधगम्यता को बल मिलता है। उदाहरण के रूप में हम रेडियो / दूरदर्शन पर अँग्रेजी में समाचार प्रसारण के रूप को भारतीय अँग्रेजी का मानक रूप कह सकते हैं। हालांकि, अँग्रेजी-लेखन में भारतीय भाषाओं के सानिध्य में अनेक प्रयोग हुए हैं। इन सबके बावजूद अँग्रेजी से न सिर्फ हम भारत के नागरिक रूप में लाभान्वित हुए हैं, बल्कि वैश्विक नागरिक के रूप में लाभान्वित हो रहे हैं।

अरिमर्दन: पूर्वोत्तर की भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता के बारे में कुछ बताइए ?

कैलाश बराल : पूर्वोत्तर में भाषायी विविधता अद्भुत है। इन भाषाओं में से कुछ तो विकसित हैं, जबकि कुछ अभी विकास कर रहीं हैं। दुर्भाग्य से ऐसी अधिकांश भाषाएँ यूनेस्को की लुप्तप्राय भाषाओं की सूची में हैं। विडंबना यह है कि सरकारें इसको लेकर बहुत संवेदनशील नहीं हैं, इन भाषाओं के विकास को लेकर जो कुछ हो भी रहा है, वह पर्याप्त नहीं है। यह एक भ्रामक स्थिति है कि यहाँ जिन भाषाओं में परास्नातक स्तर की आप के पास शिक्षा हो और आप को पता चले की वह भाषा तो खतरे में है। यह बहुत खतरनाक स्थिति है कि हम लोग यह नहीं समझ पा रहे हैं कि किसी भाषा के समाप्त होने का मतलब है, उस संस्कृति का समाप्त होना होता है। आज नीति-नियंताओं के साथ बुद्धिजीवियों की भी ज़िम्मेदारी बनती है कि इस दिशा में सार्थक प्रयास करें, ताकि कोई भाषा स्वयं को अकेली न समझे। जहाँ तक इन भाषाओं की क्षमता का प्रश्न है, नागालैंड की अनेक जनजातीय भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद हुआ है, अब जिस भाषा में बाइबिल का अनुवाद संभव है, तो उन भाषाओं की क्षमता पर किसी को संदेह नहीं होना चाहिए।

अरिमर्दन: देश के वर्तमान विश्वविद्यालयी ढाँचा को कैसे देखा जाना चाहिए ?

कैलाश बराल : देखिये विश्वविद्यालय की अवधारणा मूलत: पश्चिम की है। इसी में से 'आधुनिक विश्वविद्यालय' की के रूप में सर्वप्रथम हम्बोज नामक एक जर्मन विद्वान ने विश्वविद्यालय खोला, जो आम भीड़-भाड़ से दूर एकांत में स्थापित किया गया था, जहां शोध एवं अध्ययन सहजता से किया जा सके। इसी के आधार पर लंदन विश्वविद्यालय बना। हालांकि आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज पहले से थे। इसी क्रम में आगे भारत में भी बीएचयू और एएमयू बने, आज देश में 40 से अधिक केंद्रीय विश्वविद्यालय हैं, लेकिन वे उस अवधारणा से बिलकुल भिन्न हैं, बल्कि ये तो किसी कालेज की तरह कार्य कर रहे हैं। प्राय: इनमें सार्वभौम ज्ञान उत्पादन की बात नहीं हो रही है, क्योंकि इनके अस्तित्व में आने के अनेक राजनीतिक कारण हैं। इसीलिए आज क्षेत्र और वर्ग के नाम पर विश्वविद्यालय बन रहे हैं, और ये रोजगार पाने के केंद्र बन कर उभरे हैं। यहाँ नंबरों और ग्रेड के आधार बहुत कुछ होने लगा है। बिना किसी ठोस तैयारी के विश्वविद्यालयों की घोषणा हो जा रही है। सरकार ने आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर जिस तरह से ज़ोर दिया है, इससे विश्वविद्यालयों की तुलना आईआईटी और आईआईएम से होने लगी है, जबकि किसी विश्वविद्यालय के अनेक सामाजिक उत्तरदायित्व होते हैं। आज सामाजिक विज्ञान और मानविकी के विषय उपेक्षित हैं, जहां विचारों का उत्पादन होता है, इसी कारण आज देश में सिर्फ प्रशासनिक अधिकारी पैदा हो रहे हैं। हमको एक स्वस्थ समाज और देश के लिए शैक्षिक संस्थानों के इस प्रवृत्ति से बचाना होगा और विश्वविद्यालयों को स्वतंत्र ज्ञान उत्पादन एवं चिंतन का स्थान बनाना होगा।